अहिंसा का मनोवैज्ञानिक, संस्कृतनिष्ट अध्ययन

डॉ. बदलू राम

सह आचार्य संस्कृत

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

प्रस्तावना- अहिंसा तथा हिंसा एक मनोभाव है इसलिए यह मनोविज्ञान का विषय है। अहिंसा और हिंसा का स्थान मानव मस्तिष्क में रहता है अतः अहिंसा के विषय में मनोवैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है। पशुओं के लिए हिंसा व अहिंसा का विचार निरर्थक है क्योंकि पशु आदि हिंसा करता है तो उनमें उसके मस्तिष्क का उपयोग कम व उसके स्वभाव का उपयोग अधिक होता है । जैसे- बिल्ली जब चूहे को देखती है तो वह यह नहीं विचारती कि इसे मारने से हिंसा होगी। वह तो चूहे को देखते ही उस पर कूद पड़ती है क्योंकि यह उसका स्वभाव है।

मुख्य शब्द – अहिंसा, हिंसा, न्यायदर्शन, आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा , विरोधी हिंसा, संकल्पी हिंसा

Published in IJIRMPS (E-ISSN: 2349-7300), Volume 11, Issue 2, March-April 2023

License: Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License

हिंसा अहिंसा का विचार मानव के लिए ही महत्वपूर्ण है क्योंकि मानव बुद्धि युक्त प्राणी है । प्रश्न आता है मनुष्य हिंसा में प्रवृत्त क्यों होता है ? इस प्रश्न के उत्तर पर विचार करने पर निम्न कारण सामने आते हैं-

1. महावीर स्वामी ने कहा था "**अट्टावि संता अदुवा पमत्ता**" अर्थात् कुछ तो अभाव के कारण कुछ अतिभाव के कारण हिंसा में प्रवृत्त होते हैं ।

2. मनुष्य भय के कारण हिंसा में प्रवृत्त होता है । जब मानव किसी अन्य प्राणी से भय की आशंका रखता है तो उसे उसके प्रतिकार हेतु वह उसे पहले ही नष्ट कर देना चाहता मुनष्य, सांप, बिच्छु, शेर आदि जानवरों को मनुष्य भय के कारण ही निरपराध होने पर भी मार डालता है। इसी कारण वह दूसरे मनुष्य को भी मार सकता है ।

3. हिंसा का मनोवैज्ञानिक कारण लोभ है। लोभ चाहे धन का हो अथवा जमीन का या सांसारिक विषयवासनाओं का, उसकी पूर्ति के प्रयास में मानव निरीह तथा निरपराध प्राणियों का बध कर मांस भक्षण करता है अथवा उनकी हड्डियां व चर्म बेचता है। इसी कारण आज जंगली पशु पक्षी समाप्ति की ओर हैं । अलवर सरिस्का बाग परियोजना से बाघों का नामोनिशान मिटा दिया जाना जग जाहिर है । प्रायः हर रोज सांप, कछुएं, चीते की खाल आदि की तस्करी करना अखबारों में पढ़ने को मिल जाता है। लोभवश मनुष्य दूसरे मनुष्य एवं सम्बन्धी यहां तक की माता-पिता या गुरु की भी हत्या कर देता है ।

4. हिंसा का चौथा कारण क्रोध है । क्रोध के वशीभूत होकर भी मनुष्य हिंसा का पात्र बनता है। चाहे वह कठोर वचन बोलकर, किसी के दिल को दुखाकर अथवा आक्रोश में आकर, किसी को घायल करें अथवा बध करें।

5. हिंसा का पांचवा कारण ईर्ष्या या घृणा होता है। जब मनुष्य किसी से ईर्ष्या करता है अथवा घृणा करता है तो यह निश्चित है कि वह उसका अहित करने का विचार हमेशा करेगा ।

6. हिंसा के कारणों में मनुष्य का स्वार्थी होना" मुख्य है। पहले मनुष्य आदिकाल में जब अज्ञानी असभ्य था तो उसका स्वार्थ केवल पेट भरने तक सीमित था, इसलिए वह अपना पेट भरने के लिए हिंसा करता था । जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य होता गया उसके स्वार्थों की सीमा बढ़ती गई और धीरे-धीरे असीमित होती गई । अतः स्वार्थ पूर्ति के लिए आज मनुष्य रातदिन हिंसा में लीन है जो जितना सभ्य है वह उतना ही हिंसक है। यह कटु सत्य है ।

अतः उपरोक्त कारणों वश मनुष्य हिंसा में लीन रहते हुए अपने भावी कष्टों का कारण खुद बनते हैं तथा ऊपर से मानव का शरीर धारण करते हुए भी अंदर से हिंसक, स्वार्थपरक, हिंसा प्रवृत्ति को धारण करते हैं। जिनके मानस में यह भावना नहीं होती वह पुरुष ब्रह्म स्वरूप, परमपुरुष का प्रतिरूप होता है। अधिकांश चिन्तकों, आचार्यों, मुनियों में हिंसा के इन कारणों को मानव हृदय की दुर्बलता माना है। निर्भय व सबल व्यक्ति कभी किसी से घृणा नहीं करता वह कभी दुःस्वार्थों में लीन नहीं रहता । भय, चंचल, लोभ, ईर्ष्या, घृणा आदि दुर्विचार उसके मानस में कभी नहीं आते। अहिंसा के पीछे प्रेम व आत्म बल रहता है। इसीलिए कहा गया है कि अहिंसा कार्यों का काम नहीं वीरों का धर्म है।

यहां पर एक यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य स्वभाव से हिंसक है या अहिंसक ? इस विषय में कुछ विचार मनुष्य को स्वभावतः हिंसक मानते हैं तो कुछ अहिंसक जो निम्नामनुसार हैं-

महान् विचारक मनु ने हिंसा को मनुष्य की सहज प्रवृत्ति माना जो उसके लिए कल्याण कारी नहीं । मुनस्मृति-

न मांस भक्षेण दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृतिरेषां भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफलाः ।।[1]

मांस, मद्य, मैथुन आदि में दोष नहीं क्योंकि ये मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति हैं लेकिन इन से निवृत्ति, महान फल को देने वाली होती है। जन्म से मनुष्य पशु तुल्य ही होता है अतः उसकी ये प्रवृत्तियां साधारण प्राणिवत होती है लेकिन इन प्रवृत्तियों का निषेध करें तो वह सही अर्थों में मानव कहा जा सकता है।

संस्कृत साहित्य में उक्ति है- "जीवोजीवस्य भोजनं । कुछ दार्शनिकों के अनुसार भी जीवात्मा का स्वरूप व्यापक है जिसे खाने से कैसे बच सकते हैं, पानी के साथ दूध में, भोजन में जीवाणुओं का अस्तित्व होता है। हमारा प्रत्येक उपयोग पदार्थ जीवमय है।

यदि हम पशुओं की प्रवृत्ति देखें उनमें भी हिंसा की प्रवृत्ति होती है। उनमें मतस्य न्याय चलता है तथा एक भोजन श्रंखला है। इसी तरह मनुष्य भी एक प्राणी है तथा स्वभावतः हिंसा प्रवृत्ति वाला है। इस विचार को मानने वालों में मैक्डूगल, एडलर, फायड, डार्विन आदि विद्वान हैं।

मानव स्वभावतः अहिंसक है :-

इस विचार को मानने वाले भारतीय दर्शन हैं जो कहते हैं कि मानव स्वभाव से अहिंसक प्रवृत्ति वाला है क्योंकि हर जीव उसी परमात्मा का अंश है इस कारण मानव स्वभाव से दूसरे प्राणी के प्रति स्नेह की व आत्मीयता की भावना रखता है किन्तु बाद में दूषित परिवेश व कुसंस्कारों से वह हिंसक हो जाता है।

न्यायदर्शन में जीवात्मा को स्वभावतः ज्ञानवान माना है। सांख्य ने जीव को स्वभावतः सभी बन्धनों से मुक्त माना है।

उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं के अध्ययन से निर्णय पर पहुंचते हैं कि मनुष्य स्वभाव से अहिंसक व आत्मीय है । यदि स्वभाव से ही हिंसक व स्वार्थी होता तो उसकी प्रवृत्तियां हजारों वर्षों तक स्वाध्याय से भी दूर नहीं होती । यदि बुराईयां स्वभावतः होती तो उन्हें दूर करने का प्रयास क्यों किया जाता । दैनिक रूप से भी हम कहते हैं कि कहीं भी क्रूरता की घटना देखकर हमारा दिल कांपने लगता है, भय व करुणा से भर जाता है। जब मानव किसी प्राणी का बध करता है तो उसकी आत्मा उसे रोकती है लेकिन उसका स्वार्थ या लोभ उससे ये करवाते हैं।

डॉ. रामजी का मत है कि दुर्भाव या बुरे विचार जिसे हम मानव स्वभाव मानते हैं वह वास्तव में उसका जन्म जात नहीं है अपितु वातावरण से अर्जित विभाव मात्र है ।

मुनि नथमल का मत है कि अहिंसा में मैत्री है, सद्भावना है, एकता है, अनाशक्ति है और अद्वेष है ।

समस्या यह आती है कि यदि अहिंसा को पूर्णतः अपनाते हैं तो जीवन चलना असम्भव हो सकता है यदि नहीं अपनाते है तो क्रूर, अत्याचारी, अवानवीय कहलाते हैं । ऐसी स्थिति में हिंसा के प्रकारों को जानना आवश्यक है । मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हिंसा चार प्रकार की होती है।

1. आरम्भी हिंसा 2. उद्योगी हिंसा

3. विरोधी हिंसा 4. संकल्पी हिंसा

1. आरम्भी हिंसा :- खाना बनाना, चलना, श्वास लेना कपड़े धोना दूध इत्यादि पीना तथा अन्य ग्रहस्थ के आवश्यक कार्य जिसमें सूक्ष्म प्राणियों का बध होता है इसे आरम्भी हिंसा कहा जाता है |

2. उद्योगी हिंसा :- खेती करना, उद्योग लगाना, व्यापार आदि की हिंसा उद्योगी हिंसा है।

3. विरोधी हिंसा :- अपने परिवार राष्ट्र की रक्षा हेतु की गई हिंसा विरोधी हिंसा है ।

4. संकल्पी हिंसा :- लोभवश, घृणावश, ईष्या वश की गई हिंसा संकल्पी हिंसा कहलाती है ।

सांसारिक या ग्रहस्थी मनुष्य को अंतिम हिंसा, संकल्पी हिंसा का पूर्णतः त्याग करना चाहिए। आरम्भी, उद्योगी, विरोधी हिंसा यथासम्भव त्याग, करें पूर्णतः त्याग संभव नहीं मुनि के लिये चारों प्रकार की हिंसा निशिद्ध है ।

प्रभाव : — अहिंसा सबसे बड़ा बल है इसलिए पतंजलि के योगसूत्र में कहा है- "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संन्निधौ वैरत्याग: [2]

अर्थात्- जिस व्यक्ति के मन में अहिंसा का भाव दृढ़तापूर्वक स्थित हो जाता है तो उसके समीप आकर हिंसक व्यक्ति भी वैरभाव त्यागकर अहिंसक हो जाते हैं। साधरण व्यक्ति को यह बात असम्भव लगती है लेकिन यह सम्भव है। प्राचीन काल में ऋषियों के आश्रमों में शेर हिरण एक साथ पानी पीते थे मैनें स्वयं जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूं परिसर में भ्रमण करते समय देखा कि बीच सड़क पर कुत्ता जो स्वभाव से हिंसक होता है खड़ा था तथा मोर एक-एक करके उसके चारों तरफ आकर खड़े हो गये मोर एक दम करीब से कुत्ते को देख रहे थे तथा कुत्ता भी लगता था जैसे उनसे बात कर रहा था । इस दृश्य को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ तथा अपार आनन्द की अनुभूति हुई यह दृश्य इस अहिंसामय तपोभूमि के सानिध्य का ही फल था ।

अहिंसा प्रतिष्ठित हृदय वाला व्यक्ति अपने मधुर व्यवहार, शुद्ध वातावरण, आत्मविचार, मन का विस्तार, ईश्वर की प्रसन्नता आदि से हिंसक स्वभाव वाले प्राणियों को अहिंस व सात्विक चित्त वाला बना देता है। यहां जैन विश्वभारती परिसर में कहीं गन्दगी नहीं है, भवन में कहीं किसी के द्वारा कचरा या पीक डाला नहीं जाता । वृक्ष ही यहां पूर्णतः सुरक्षित हैं अतः यहां आने वाला विषयवासना से निकलकर आया सांसारिक व्यक्ति भी स्वच्छ पवित्र मानसिकता से युक्त हो जाता है तथा प्रातः सायं घूमना प्रारम्भ कर प्रकृति का सानिध्य प्राप्त करता है । तथा यहां के परिवेश के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं होता। मांसाहारी यहां आकर मांस से घृणा करने लगते हैं मद पान करने वाला भी, तथा पीक डालने वाला व्यक्ति भी, यहां ऐसे अवगुणों के आवरण को उतारकर रख देता है ।

व्यक्तित्व पर प्रभाव :- हमारे अर्न्तनिष्ठ मनोभावों का तीव्र प्रभाव हमारे व्यक्तित्व पर पड़ता हैं। व्यक्तिगत विचारों से ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व गुणों, अवगुणों से ही मनुष्य का मान अथवा सम्मान होता है। अहिंसा मय व्यक्तित्व वाले मनुष्य का स्वभाव उसके आसपास के वातावरण पर पड़ता है । वह व्यक्ति सदैव प्रसन्न रहता है। सभी उसके लिए अपने होते हैं, कोई पराया नहीं होता। वह नितान्त सौम्य करुणामय हो जाता है। दुर्गुण उसमें प्रवेश नहीं कर पाते । क्रूर प्रशासक भी अहिंसावादी के सामने नतमस्तक हो जाते हैं । भारतीय इतिहास में महात्मा गांधी की शक्ति से कौन परिचित नहीं जिनसे पूरी अग्रेंजी सत्ता कांपती थी । जिस समाज में अहिंसक लोग रहते है वह समाज, सुखद, आनन्दमय होकर चतुष्ट्य पुरुषार्थ को प्राप्त करने वाला होता है ।

महत्व :- अहिंसा एक ऐसा तत्व है जो व्यक्ति के लिए तो हितकारी है इसके साथ-साथ वह समाज के लिए अधिक कल्याणकारी है। गांधी दर्शन में गांधीजी ने सत्य पालन हेतु अहिंसा को आवश्यक माना। वह कहते थे कि मैं तो प्रत्यक्ष ईश्वर का दर्शन करना चाहता हूं। मैं जानता हूँ । कि सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर को पहचानने का अचूक साधन अहिंसा है, प्रेम है अहिंसा वह ज्योति है जिससे सत्य का दर्शन होता है।[3] अहिंसा ही सत्येश्वर के दर्शन करने का सीधा और छोटा सा रास्ता है। गांधी जी के अनुसार आवश्यकता से अधिक संग्रह, जलदुरुपयोग, अखाद्य पदार्थ का उपयोग, छल, कपट आदि भी हिंसा है। किसी का वद्य करना हिंसा है किन्तु अशाध्य रोग से पीड़ित दुःख से छटपटाते जीव के प्राण हरण करना हिंसा नहीं। बस कि उसमें
उस जीव का हित निहित हो ।

स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार हिंसा :- हिंसा व अहिंसा दोनों ही परिस्थिति वश पालनीय हैं। एक स्थान या एक देश का आचरण दूसरे स्थान में हिंसा माना जा सकता है। जैसे पापी " को मारना, शत्रु को मारना हिंसा नहीं। हमें हिंसा का प्रतिकार करते हुए अहिंसा का पालन करना चाहिए।[4] सच्चा अहिंसक वही है जो हिंसा में समर्थ है लेकिन हिंसा नहीं करता । अहिंसा में क्रियाशीलता होनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को क्रियाशील रहना चाहिए। अहिंसा तभी सफल होती है जब उसमें क्रियाशीलता होगी। उनके अनुसार परिस्थिति के साथ कर्तव्य में भी परिवर्तन होता है । श्रीअरविन्द जी अहिंसा को मानव विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। मानव जाति का पूर्ण विकास केवल अहिंसा से ही सम्भव है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अहिंसा को सर्वोत्तम धर्म स्वीकार किया है। मांस भक्षण करना उनके अनुसार सर्वथा निषिद्ध कर्म है क्योंकि मांस प्राणी वध से प्राप्त होता है। दुष्टों को मारना हिंसा नहीं है।

यदि एक दुष्ट को दण्ड नहीं दिया जाये तो सहस्रों प्राणियों को दुःख होता है। [5]

अंत में लेख में निहित मतों पर विचार से यहीं निष्कर्ष निकलता है कि साधु, सन्यासी, महात्मा हिंसा का पूर्वतः त्याग करें तथा ग्रहस्थी व सांसारी जन अपने अपने धर्म का पालन करते हुए समस्त प्राणियों में आत्मवत भाव रखते हुए "परजनहिताय परजनसुखाय" की भावना रखते हुए हिंसा का त्याग करें तथा अहिंसा का आश्रय प्राप्त करें। समस्त मानव प्रकृति के प्रति तथा समस्त जड़ चेतन जीवों के प्रति क्रूरता का आचरण न करें। आज का मानव उस मूर्ख के समान हो गया है। जो जिस डाल पर बैठा है उसी डाल को काट रहा है।

अतः मनुष्य के मानस से यदि ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, राग, क्रोध, भय, हीन भावना, अहम भावना आदि भाव समाप्त हो जायेंगे तो मानव का स्वभाव स्वयं ही अहिंसा मय हो जायेगा ।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. मनुस्मृति
2. योगसूत्र पतंजलि

3. गांधी दर्शन मीमांसा - पृ. - 92,93
4. कर्मयोग - स्वामी विवेकानन्द,
5. सत्यार्थप्रकाश- स्वामी दयानन्द